International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 383-385

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में शासक वर्ग

डॉ0 आनन्द कुमार
एक्टेन्शन लेक्चरार, इतिहास, रा. म. महाविद्यालय, महेन्द्रगढ़, हरियाणा, भारत।

सारांश
सल्तनत काल तथा मुगल काल को भारतीय इतिहास में मध्यकाल के नाम से भी जाना जाता है। मध्ययुग में शासक वर्ग सबसे महत्वपूर्ण वर्ग था, जिसके हाथ में सम्पूर्ण शासन की बागडोर थी। सल्तनत काल में इस वर्ग का मुखिया सुल्तान कहलाता था और मुगल काल में उसे या बादशाह के नाम से संबोधित किया जाता था। सल्तनत काल और मुगल काल के शासन करने के तरीके में काफी अन्तर था। सल्तनत काल के सुल्तान और मुग़ल काल के बादशाह भोग–विलास, मद्यपान आदि में डूबे रहते थे। दोनों ही कालों में जनसाधारण का जीवनयापन कठिनाई से होता था जबकि अमीर वर्ग पहले की तुलना में धनवान ही होते जाते थे। मध्यकाल में के व्यवहार का अमीर वर्ग तथा जनता पर उनके प्रभाव आदि को इस शोध–पत्र में दिखाने का प्रयास करेंगे।

मुख्य शब्द : शान–ओ–शौकत, भोग–विलास, रहन–सहन, राज–दरबार, सामन्त।

प्रस्तावना
मध्ययुग में शासक वर्ग सबसे महत्वपूर्ण वर्ग था, जिसके हाथ में सम्पूर्ण शासन की बागडोर थी। सल्तनत काल में इस वर्ग का मुखिया सुल्तान कहलाता था और मुगल काल में उसे या बादशाह के नाम से संबोधित किया जाता था। अमीर–उमरा भी शासक वर्ग में ही गिने जाते थे। सल्तनत काल में सुल्तान राजय का सर्वोच्च और निरंकुश पदाधिकारी था। वह सार्वभौम शासक था, शासन की सारी प्रभुसत्ता उसमें निहित थी। राज्य की कार्यकारी विधायी, न्यायिक और सैनिक शक्तियां उसके हाथ में केन्द्रित थीं। उसके नाम का खुतबा पढ़ा जाता था और सिक्कों पर उसका नाम खोदा जाता था। डॉ. कुरैशी ने दिल्ली सल्तनत के प्रशासन का विवेचन करते समय वैधानिक सम्प्रभु और वास्तविक सम्प्रभु शब्दावलियों का प्रयोग किया है, क्योंकि कुछ अपवादों को छोड़कर दिल्ली के लगभग सभी सुल्तान वैधानिक रूप से तो स्वयं को खलीफा का प्रतिनिधि या नायब मानते थे, पर व्यवहार में उन्होंने वास्तविक सम्प्रभुता का उपयोग किया। उनके शासन प्रबन्ध में खलीफाओं का कोई हस्तक्षेप या निर्देश नहीं रहा। खलीफा को वैधानिक सम्प्रभु मानने के पीछे इस्लामी प्रभुत्व सिद्धान्त काम कर रहा था।[1] इस्लामी प्रभुत्व–सिद्धान्त के अनुसार संसार के सब मुसलमानों का चाहे वे कहीं भी हों एक ही मुस्लिम शासक होता था, जिसे खलीफा कहते थे। उन दिनों जबकि खलीफा की शक्ति चरम सीमा पर थीं वह खिलाफत के विभिन्न प्रान्तों के लिए सूबेदारों की नियुक्ति किया करता था।[2] जब कभी कोई सुबेदार स्वतन्त्र शासक बन बैठता था अथवा कोई मुस्लिम साहसिक नेता नया देश जीतकर राजा बन जाता था तब भी अपने पद को स्थायित्व देने के लिए वह खलीफा के नाम का उपयोग करता था, अपने को उसका अधीनस्थ सामन्त कहता था और अपने पद के लिए उससे मान्यता प्राप्त करता था, यद्यपि व्यवहारिक दृष्टि से वह पूर्ण सत्ताधारी शासक की भांति ही आचरण करता था।[3] वास्तविक दृष्टि से भारत में सुल्तान, इतना शक्तिशाली था और साथ ही खलीफा से इतना दूरस्थ था कि उसके मामलों में खलीफा का इस्तक्षेप अव्यवहारिक और राजनीतिक दृष्टि से अदूरदर्शी होता था। अभिप्राय यह है कि दिल्ली से सुल्तान वास्तविक सम्प्रभुता का उपभोक्ता था और यदि वह खलीफा के प्रति सम्मान प्रदर्शित करता था और स्वयं को खलीफा का नवाब या प्रतिनिधि या सहायक कहता था तो वह केवल एक औपचारिकता थी, प्रचलित परम्परा का निर्वाह था, जिसे तोड़ने में सुल्तान को कोई लाभ दिखाई नहीं देता था। नाममात्र के लिए खलीफा को को सम्प्रभु मानने से इन्कार करके उलेमा–वर्ग और मुस्लिम जनता में असन्तोष फैलाना दिल्ली सुल्तान के लिए एक राजनीतिक अदूरदर्शिता होती।[4] जब सम्पूर्ण दिल्ली साम्राज्य में सुल्तान ही सर्वोच्च मानवीय अभिकरण था, वही कानून का अन्तिम निर्माता, क्रियान्वयनकर्ता और व्याख्याकार था तो फिर मुस्लिम परम्परा के रूप में यदि वह खलीफा को मानमात्र के लिए सम्प्रभु कहता था तो इसमें सुल्तान का क्या बिगड़ता था? सुल्तान ही सर्वोच्च कार्यपालक, सर्वोच्च सेनाध्यक्ष, सर्वोच्च विधि–निर्माता और सर्वोच्च न्यायाधिकारी होता था। उसकी शक्तियां व्यापक थीं और उसकी सत्ता लगभग अनियन्त्रित थी। सुल्तान की शक्ति कितनी अपरिमित थी, यह इसी तथ्य से स्पष्ट है कि वह न केवल राज्य की सम्पूर्ण प्रजा का शासक था बल्कि मुस्लिम वर्ग का धार्मिक नेता भी था अर्थात् उसमें जर्मनी के विलियम कैसर और रोम के पोप दानों की शक्तियां केन्द्रित थीं। सुल्तान की प्रभुता का वास्तविक साधन शक्ति था इसे उस युग के केवल विचारशुन्य जनसमूह ही नहीं, बल्कि सैनिक, कवि और उलेमा भी समझते तथा स्वीकार करते थे। कार्यपालिका के सर्वोच्च प्रधान के रूप में सुल्तान राजकाज उन अधिकारियों तथा मन्त्रियों की सहायता से संचालित करता था, जिनका चयन वह स्वयं करता था।[5]

दिल्ली के सुल्तान वास्तविक सम्प्रभु थे, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन सर्वाधिक निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासक भी शासन का कार्य अकेला नहीं कर सकता था। दिल्ली के निरंकुश सुल्तानों को भी राज्य के कुछ शक्तिशाली तत्वों के सहयोग से शासन करना पड़ता था, अर्थात् उनकी निरंकुशता कुछ सीमाओं से प्रतिबन्धित थी, यथा – 1) व्यक्तिगत कानून और धर्म का प्रभाव, 2) अमीरों का सहयोग, 3) प्रशासन के सार्वजनिक अधिकारी और कर्मचारी, 4) मुसलमानों की कम संख्या, 5) मुस्लिम योद्धा एवं 6) सुल्तानों का चुनाव और गद्दी से उतारा जाना। इन तत्त्वों को किचित् स्पष्ट करना उपयुक्त होगा।[6] सुल्तान अपनी प्रजा के व्यक्तिगत और धार्मिक

कानून में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था, क्योंकि मुसलमानों और हिन्दुओं दोनों की अपनी–अपनी विधि–व्यवस्थाएं थीं, जिनमें अपने प्रकरणों की बलि देकर भी, वे हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकते थे। सुल्तानों ने इस संबंध में स्वयं को असहाय अनुभव किया था। दिल्ली के सभी सुल्तानों को, किसी न किसी कारण से अमीरों और सरदारों का सक्रिय समर्थन करना पड़ा। अमीरों की शक्ति के कारण उनकी निरंकुशता शिथिल हो जाती थी। दिल्ली के सुल्तानों को अपने राज्य के आरम्भ से ही अधिकारियों की एक व्यवस्थित श्रृंख्ला सहित शासनतन्त्र का प्रबन्ध करना पड़ा। अपने अनुभव और तकनीकी ज्ञान के कारण राज्य के लिए उनकी सेवाएं बहुमूल्य थी और कोई भी शासक इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकता था।[7] सुल्तान अपने अनुभवी और योग्य अधिकारियों के परामर्श से कुछ न कुछ मार्गदर्शन ग्रहण करते थे और नीतियों का निर्धारण करते समय उनके परामर्श को ध्यान में रखते थे। राज्य की अन्तिम शक्ति मुस्लिम योद्धाओं में निहित थी, जो सुल्तान के मान–सम्मान की रक्षा के लिए अपना खून बहाते थे। कोई भी सुल्तान इन योद्धाओं की पूर्ण उपेक्षा नहीं कर सकता था। क्योंकि उनके समर्थन के अभाव में वह अपनी योजनाओं की पूर्ति में सफल नहीं हो सकता था। निर्वाचन की कोई निश्चित पद्धति तो इस्लाम में सचमुच कभी नहीं रही, अधिक से अधिक यही होता था कि अमीरों और अन्य प्रधान व्यक्तियों के समर्थन को ही जनता द्वारा निर्वाचन मान लिया जाता था। इस विशिष्ट अर्थ वाले निर्वाचन का प्रयोग इल्तुतमिश, गयासुद्दीन तुगलक, फीरोज तुगलक आदि के संबंध में किया गया। राज्य के लिए अनुपयोगी सुल्तानों को हटा दिए जाने के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।[8] वास्तव में उन सुल्तानों का गद्दी पर टिकना मुश्किल था, जो दुर्बल, अयोग्य और सैनिक प्रतिभा से शून्य थे। इस दृष्टि से अमीरों का महत्व सुल्तानों को गद्दी पर बैठाने और उतारने वालों के रूप में कायम रहा।[9]

सुल्तान अत्यन्त वैभव–विलासिता का जीवन व्यतीत करता था। वह छत्रयुक्त रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठता था। छत्र, दूरबाश, सायवान उसके राज्य–चिन्ह थे। जब सुल्तान का राज्याभिषेक होता था तब अपार धन खर्च किया जाता था। उस समय शानदार आयोजन होता था। जब अलाउद्दीन खिलजी गद्दी पर बैठा तब जनता के ऊपर सोने–चांदी की बौछार की गई थी। सुल्तान की ओर से अपने अमीरों को स्वर्ण दिया गया था। इसके अलावा और भी अनेक उपहार प्रदान किए गए थे। इसी प्रकार फीरोज तुगलक, मुहम्मद तुगलक और मुगल बादशाहों के गद्दी पर बैठने पर भी बड़ी शान से उत्सव मनाए गए थे।[10] गद्दी पर आसीन होने के बाद जब सुल्तान पहली बार कही जाता था तब वहां भी उसके सम्मान में उत्सव किया जाता था और भेंट प्रदान की जाती थी। इब्नबतूता ने सुल्तानों के ऐश्वर्य–सम्पन्न दरबारी जीवन का बड़ा ही आकर्षक चित्रण किया है। उसने मुहम्मद तुगलक के बारे में बताया है कि महल के तीन फाटकों पर तीन तुरही बजाने वाले बैठते थे। वे सुल्तान के आगमन की सूचना देते थे। सुल्तान के वजीर और अन्य सचिव यथास्थान पंक्तियों में खड़े होते थे। सुल्तान के आसन पर बैठ जाने पर महल के कुछ कर्मचारी एक स्वर में 'बिस्मिल्लाह' कहते थे। हाथी दरबार में सुल्तान के लिए सलामी देते थे और तब दर्शक सुल्तान के दर्शन करने के लिए उपस्थित किए जाते थे। इतना ही नहीं दर्शक का स्तर धन में रखकर तुरही मन्द या ऊँचे स्वर में बजाई जाती थी।[11]

दरबार में सुल्तान के मनोरंजन के लिए अनेक कलाकार, कलाबाज, नादिम, भांड, संगीतज्ञ और विदूषक आदि रहते थे। दास–दासियों की तो भीड़–सी लगी रहती थी, जिन पर अपार धन व्यय होता था। इनके अलावा दरबार में कवि, ज्योतिषी तथा अन्य अनेक वर्गों के व्यक्ति आश्रय पाते थे। नादिमों का कार्य सुल्तानों को प्रसन्न रखना था। ये प्रतिभासम्पन्न तथा अत्यधिक व्यवहारकुशल होते थे। इनका सुल्तानों पर विशेष प्रभाव होता था। 'सर जानदार' सुल्तानों की रक्षा करते थे।[12] 'सर आबदार' सुल्तान के स्नान का प्रबन्ध करते थे तथा भोजन का 'चाशनीगीर' शराब पिलाने के लिए 'साकी–ए–खास' नियुक्त किए जाते थे।[13]

मुगलकालीन समाज में भी मुगल शासक सर्वोच्च था। उसके नीचे मनसबदार ओर अमीर उच्च पदों पर नियुक्त होते थे। बादशाह की इच्छानुसार सामन्त वर्ग देश की शासन–प्रणाली का संचालन करता था। शासन के प्रमुख–प्रमुख पद सामन्तों को दिए जाते थे। राजकीय पद अन्य पदों की तुलना में तुच्छा समझे जाते थे। समन्त देश के व्यक्ति की बजाय विदेशी भी हो सकता था, परन्तु उसे देश से बाहर धन ले जाने की छूट नहीं थी।[14]

सल्तनतकाल के सुल्तानों की भांति मुगल बादशाह, सामन्त आदि भाग–विलास, मद्यपान आदि में डूबा रहता था। इन सबका शान–शौकत से रहना जीवन का आवश्यक अंग बन गया था। श्री लूनिया के शब्दों में 'भोग–विलास से परिपूर्ण जीवन मुगल राज–दरबार और मुगल–युग के सम्मान के लिए आवश्यक वस्तु थी। उच्च वर्गों के वस्त्र, भोजन और जीवन–निर्वाह एवं रहन–सहन में विलासिता की आभा झलकती थी। इससे धनवानों और सामन्तों के जीवन–स्तर तथा साधारण लोगों के जीवन–स्तर में बड़ा अन्तर होना स्वाभाविक था। इस युग में भारतीय राज–सभाओं तथा सामन्तों के जीवन में सबसे अधिक आकर्षक तत्व भोग–विलास की अतुलनीय भावना थी।' उन्होंने आगे बताया है कि 'राजवंश, सामन्त और उच्च वर्ग के जीवन का प्रमुख उद्देश्य अधिक से अधिक सुख–विलास एव ऐश्वर्य का जीवनयापन करना था, यद्यपि उनमें दानशीलता, वीरता, विद्या–प्रेम आदि गुण थे। उनमें गर्व व आत्म–सम्मान कूट–कूटकर भरा था। वे शोषक थे और श्रमिकों व निम्न श्रेणी के लोगों द्वारा उत्पन्न धन का अपव्यय करते थे।[15] उच्च वर्ग की शान–शौकत अन्य व्यक्तियों के शोषण पर निर्भर करती थी। बरनियर ने भी मुगलकालीन आर्थिक दशा का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'कृषि की दशा अवनत थी, शिल्पकार दरिद्र थे और प्रान्तीय शासक प्रजा को कष्ट देते थे।'

निष्कर्ष

इस हम अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि सल्तनतकाल के सुल्तानों और मुगल बादशाह भोग–विलास, मद्यपान आदि में डूबे रहते थे। धनवानों और सामन्तों के जीवन–स्तर तथा साधारण लोगों के जीवन–स्तर में बड़ा अन्तर था। राजवंश, सामन्त और उच्च वर्ग के जीवन का प्रमुख उद्देश्य अधिक से अधिक सुख–विलास एव ऐश्वर्य का जीवनयापन करना था। कृषि की दशा अवनत थी, शिल्पकार दरिद्र थे और प्रान्तीय शासक प्रजा को कष्ट देते थे।

सन्दर्भ

1. हबीब, मोहम्मद एण्ड निजामी, के.ए., दिल्ली सल्तनत, भारतीय अनुसंधान परिषद, 1950, पृ. 15
2. वही, पृ. 16
3. श्रीवास्तव, ए.एल., दिल्ली सल्तनत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1965, पृ. 25
4. वही, पृ. 26
5. निजामी, के.ए., पोलिटिक्स एण्ड सोसाइटी ड्यूरिंग दि अर्ली मिडिवल पीरियड़, नई दिल्ली, 1974, पृ. 42
6. निजामी, पूर्वोक्त, पृ. 44
7. हबीब, मोहम्मद, निजामी, के.ए., दिल्ली,, पृ. 72

8. वही, पृ. 84
9. निजामी, के.ए., पूर्वोक्त, पृ. 84
10. अशरफ, के.एम., लाइफ एण्ड कंडीशन ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, दिल्ली, 1959, पृ. 56
11. वही, पृ. 57
12. श्रीवास्तव, ए.एल., वही, पृ. 78
13. अशरफ के.एम., वही, पृ. 105
14. श्रीवास्तव, ए.एल., वही, पृ. 97
15. लूनिया, बी.एन., भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, पृ. 78